International Research Journal of Human Resource and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor 6.924 Volume 10, Issue 12, Dec 2023
Website- www.aarf.asia, **Email** : editoraarf@gmail.com

गुप्तोत्तरयुगीन राजपूताना में सूर्योपासना की परंपरा
(प्रतिहारवंश के विशेष संदर्भ में)

प्रताप सिंह, शोधार्थी
मौलाना आजाद विश्वविद्यालय, जोधपुर

सनातन धर्म में पृथ्वी माता की ही भांति सूर्य–चंद्र आदि खगोलीय निकायों की उपासना–अर्चना की सुदीर्घ परंपरा चली आ रही है। आदिवासी समुदायों से लेकर विभिन्न राजवंशों तक सूर्योपासना के प्रकीर्ण संदर्भों से यह विदित होता है कि सूर्यदेव के प्रति जनता की अगाध आस्था रही है।

महाभारत ने सूर्यपुत्र कर्ण एवं रामायण में बालसूर्य को फल जानकर हनुमान द्वारा लपक लिए जाने की जनश्रुतियां इस बात का प्रमाण है कि साहित्यकारों की ही भांति राजवंशों में भी सूर्य से जुड़े रहने की तीव्र उत्कठा रही है।

ऋग्वेद में सूर्य संबंधी संदर्भ :–

ऋग्वेद में सूर्या का स्वरूप निर्धारित करना एक जटिल समस्या है। उसकी व्याख्या अनेक प्रकार से की जा सकती है। विभिन्न विद्वानों ने सूर्या से सम्बद्ध सूक्त (ऋग्वेद 10.85) व अन्य सूक्तों में यत्र–तत्र प्रतिपादित विचारों के आधार पर उसके स्वरूप को निर्धारित करने की चेष्टा की है जो युक्ति संगत है।

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

ऋषिका के रूप में :–

इतिहास के कुछ विद्वान यह मानते है कि सूर्या ऋग्वेद की एक ऋषिका है, जिसका स्वरूप रहस्यात्मक है। उन्हें ऋग्वेद के दशम मण्डल के पच्चीसवें सूक्त का दर्शन हुआ था, जिसमें विवाह सम्बन्धी 47 मन्त्र है। इस सूक्त के अतिरिक्त सूर्या कतिपय अन्य मन्त्रों की भी ऋषिका है। अधिकतम मन्त्रों के दर्शन की दृष्टि से ऋग्वेद की ऋषिकाओं में उनका प्रथम स्थान है।[1]

निघण्ट में 'सूर्या' शब्द का परिगणन 'वाक्' के पर्यायों में किया गया है। बृहद्देवताकार शौनक ने भी एक स्थल पर 'सूर्या' का अर्थ 'दिव्य वाणी' किया है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में 'उषा' को भी अश्विनी की दिव्य वाणी बतलाया गया है। पवित्रवाणी, जिसका उल्लेख ऋग्वेद में 'वाणीची' शब्द से किया गया है, जिसे अश्विनौ के रथ पर सूर्या की भांति स्थित बताया गया है। जिस स्थल में मरूतों की सहचरी रोदसी अर्थात प्रार्थना को तुलना सूर्य से की गई है। उसी स्थल पर उसकी तुलना मनुष्यों की प्रार्थना से भी की गई है। सम्भवतः सूर्या व मानव–वाणी में उसी प्रकार का तादात्म्य है जिसने दो प्रार्थनाओं (वाणियों) के युगल की धारणा पैदा की।[2]ऐसे अनेक उदाहरण विभिन्न ग्रन्थों में मिलते है।

उपर्युक्त सन्दर्भों से यही निष्कर्ष निकलता है कि सूर्या अपने विभिन्न रूपों में से किसी न किसी रूप में 'प्रार्थना' की प्रतिनिधि है। ''ऋग्वेद के जिन मन्त्रों में सूर्या को जानने की बात कही गई है उसका तात्पर्य प्रारम्भ से (अर्थात ऋग्वेद के काल में) 'पवित्र शब्द' (अथवा 'प्रार्थना') को जानना रहा होगा।''[3]

यास्क ने सूर्या को 'सूर्या की पत्नी' बताया है और उसे उषा का ही अप रनाम माना है। इसी की पुष्टि में उन्होंने ऋग्वेद का एक मन्त्र और किसी ब्राह्मण ग्रन्थ का वचन उद्धृत किया है। बृहद्देवताकार शौनक ने भी 'सूर्या' अर्थ 'दिव्य वाणी' के अतिरिक्त 'सूर्या की पत्नी' भी किया है। सम्भवतः यास्क व शौनक ने यहां 'पत्नी' शब्द का रूढ़ अर्थ में प्रयोग नहीं किया है। इसे 'सहचारिणी' अर्थ में ग्रहण करना उचित प्रतीत होता है। इस प्रकार यास्क व शौनक

द्वारा सूर्या को सूर्य की पत्नी बतलाने का अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि सूर्य की सहचारिणी प्रभा का नाम 'सूर्या' है। ऐसे प्रमाणित साक्ष्य है।

जहाँ तक ऋग्वेद का प्रश्न है, उसमें अनेक स्थलों पर सूर्या का सूर्य अथवा सविता (सावित्री) के रूप में उल्लेख हुआ है। यही एडोल्क कगा, हिलेब्राण्डस्, बरगेन, मैक्डानल आदि पाश्चात्य विद्वान सूया का अर्थ स्वीकार करते है। ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक ऋषियों को सूर्या शब्द का अर्थ 'सूर्य प्रभा' अथवा 'उषा' ह, अभिप्रेत था जिसे उन्होंने सूर्य अथवा सविता की पुत्री कहा। स्वामी दयानन्द ने भी सूर्या का अर्थ 'सूर्य सम्बन्धिनी कान्ति किया है। यदि यासक, हिलेब्राण्डस् प्रभृति के मतानुसार सूर्या को उषा से अभिन्न माना जाय तो स्वामी दयानन्द के मन्तव्य को समझा जा सकता है। स्वामीजी के अनुसार जो पदार्थ जिससे उत्पन्न होता है वह उसके प्रति सन्तान के समान होता है। वेदमन्त्रों में जहां किसी उत्पन्न पदार्थ पिता के समान होता है और उत्पत्ति का कारण भूत पदार्थ पिता के समान होता है। वेदमऩें में जहां किसी उत्पन्न पदार्थ को पुत्र अथवा पुत्री तथा उत्पादक पदार्थ को पिता कहा गया है वहां उस कथन को रूपक अलंकार में ही समझाना चाहिए। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वामीजी के मत में सूर्य में उत्पन्न होने वाली शक्ति अथवा उषा को ही ऋग्वेद में सूर्यपुत्री 'सूर्य' कहा गया।[4]

सोम के साथ सूर्या के कल्पित सम्बन्ध सदैव विवाह का रूप नहीं लेते। सूर्य–पुत्री सूर्या, जिसे ऋ. 9.72.3 में सोम की प्रेमिका बताया गया है, का उल्लेख एक प्रकार की पुजारिन के रूप में हुआ है जो दिव्य वृषभ सोम को शुद्ध करती है। यह वर्णन उन व्याख्यान की पुष्टि करता है जिसके अनुसार सूर्या का वर सोम पवित्र पेय सोम से अभिन्न है। यह सोम मादक पेय है, जो द्युलोक से प्रवाहित होता है और जिसे पृथिवी पर तैयार किया जाता है। सूर्या–विवाह की पुराकथा में सोम के स्थानापत्र वर अनेक है। उनमें से पूषन एक है। सूर्या के पति अथवा प्रेमी की हैसियत से वह (पूषन) सोम से अभिन्न है। ऋ. 9.101.7 में पूषन और सोम को अभिन्न माना गया है।[5]

सूर्यपासना की परम्परा :–

पौराणिक से लेकर अद्यतन तक सूर्यपासना परम्परा बड़ी समृद्ध रही है। सभी युगों में सूर्यपासना के संदर्भ मिलते है। 7वीं ई. से 12वीं ई. के मध्य का लगभग 500 वर्षों का समय भारतीय इतिहास में 'राजपूत काल' के नाम से जाना जाता है क्योंकि राजनीतिक क्षितिज पर उभरने वाल नवीन राजवंश अपने को 'राजपूत' नाम से संबोधित करते थे। राजपूत काल भारतीय इतिहास में न केवल राजनीतिक वरन धार्मिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण परिवर्तन का काल था। साहित्यिक एवं आभिलेखीय साक्ष्यों के अध्ययन से विदित होता है कि तत्कालीन समाज में पौराणिक हिन्दू धर्म का पूर्ण प्रभाव था। शासक से लेकर जनसाधारण सभी अपनी आस्था एवं रूचि के अनुकूल देवी–देवताओं की उपासना करते थे। तत्कालीन अभिलेखों से समकालीन समाज का धर्मसहिष्णु दृष्टिकोण स्पष्ट होता है जिसकी प्रेरणा से यह सर्वथा सम्भव था कि एक ही राजवंश का एक उपासक तो वैष्णव हो, द्वितीय परम शैव, तृतीय भगवती का उपासक और चतुर्थ परम आदित्य भक्त। राजपूत काल में प्रचुर संख्या में निर्मित 'हरिहर' (विष्णु एवं शिव), 'सूर्य–नारायण' (सूर्य और विष्णु), 'मार्तण्ड–भैरव' (सूर्य–शिव), 'हरिहर पितामह–मार्तण्ड' (विष्णु, शिव, ब्रह्मा, सूर्य) आदि की संयुक्त प्रतिमाएं भी उपर्युक्त दृष्टिकोण की व्यापक लोकप्रियता की पुष्टि करती है।[6]

राजपूत नरेश स्वयं को सूर्यवंशी घोषित कर गौरवान्वित अनुभव करते थे। अनेक राजपूत नरेशों ने सूर्यमंदिरों एवं सूर्यप्रतिमाओं का निर्माण करवाया, सौर–मंदिरों को उदारता पूर्वक दान दिया और अपने अभिलेखों में सूर्यदेव की महिमा का गुणगान किया। इन नरेशों ने सौर–सम्प्रदाय को लोकप्रिय बनाने एवं इसके चतुर्दिक प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सूर्य उपासना एवं प्रतिहार शासक :

राजपूत राजवंशों में सर्वप्रथम गुर्जर प्रतिहार राजनीतिक क्षितिज पर उभरे। इनकी अनेक शाखाएं थी जिनमें माण्डव्यपुर मेदन्तक, भृगुकच्छ–नांदीपुरी और अवन्ति–कन्नौज

शाखाओं का इतिहास सुविदित है। इन शाखाओं में माण्डव्यपुर–मेदन्तक एवं अवन्ति–कन्नौज शाखाएं विशेष प्रसिद्ध थीं। ये शाखाएं एक ही कुल की प्रतीत होती है क्योंकि दोनों ही श्रीराम के अनुज लक्ष्मण को अपना पूर्वज मानती थीं तथा दोनेां ही शाखाओं में कक्कुक, नागभट्ट और भोज आदि व्यक्तिवाचक नामों से भी समानता है। माण्डव्यपुर (मण्डोर–जोधपुर) शाखा के प्रतिहारों के इतिहास पर मुख्य रूप से विक्रम संवत 894 की बाउक प्रशस्ति एवं विक्रम संवत् 918 के घटियाला अभिलेख से प्रकाश पड़ता है। इन अभिलेखों में उक्त शाखा का आदिपुरूष हरिशचंद्र नामक ब्राह्मण को बताया गया है। हरिशचंद्र नामक ब्राह्मण को बताया गया है। हरिश्चंद्र की दो पत्नियां थीं – एक ब्राह्मण, द्वितीय क्षत्रिय जिसका नाम भद्रा था। भद्रा ने चार पुत्रों– भोगभट्ट, कक्क, रज्जिल एवं दद्द को जन्म दिया जो कि क्षत्रिय प्रतिहार कहलाये। इन चारों पुत्रों के बारे में कहा गया है कि इनमें से प्रत्येक पृथ्वी पर स्वामित्व करने में समर्थ था। सम्भवतः यहां इस बात की ओर संकेत है कि उनमें से प्रत्येक पृथक–पृथक रियासत पर राज्य करता था। बाउक प्रशस्ति एवं घटियाला अभिलेख में माण्डव्यपुर शाखा की बारह पीढ़ियों तक के राजाओं का उल्लेख मिलता है।

इस तथ्य पर सभी प्रमाण एकमत हैं कि प्रतिहारों की शक्ति का उदय गुर्जरत्रा में हुआ था। गुर्जरत्रा या गुर्जर भूमि उस समय की एक विशिष्ट भौगोलिक इकाई थी जिसमें राजस्थान का पश्चिमी भाग, विशेषतः भूतपूर्व मारवाड़ या जोधपुर राज्य का अधिकांश भाग और उससे लगा हुआ वर्तमान गुजरात का कुछ भाग सम्मिलित था। ऐसा प्रतीत होता है कि अवन्ति–कन्नौज शाखा के प्रतिहारों ने चावड़ों से सर्वप्रथम भीनमाल का राज्य छीना तदन्तर आबू, जालौर आदि स्थानों पर इनका अधिकार रहा। धीरे–धीरे अपनी शक्ति का विस्तार करते हुए इन्होंने लाट और मालवा पर अधिकार कर लिया। नागभट्ट प्रथम (लगभग 733–46 ई. सन्), कक्कुड और देवराज वत्सराज (लगभग 783–95 ई.) नागभट्ट द्वितीय (लगभग 795–853 ई.), रामभद्र (लगभग 833–36 ई.), भोज द्वितीय (लगभग 908–13 ई.), महीपाल प्रथम (लगभग 913–42 ई.) आदि शासकों न प्रतिहार शक्ति को उत्तर भारत की सार्वभौम शक्ति के रूप में स्थापित करने में महत्वपूर्ण योग दिया।[7]इसके संकेत अधिकांश संदर्भों में मिलते है।

अभिलेखीय साक्ष्यों से विदित होता है कि राजपूत काल में वैष्णव एवं शैव सम्प्रदाय के साथ–साथ सौर सम्प्रदाय भी लोकप्रिय था। प्रतिहार काल में तो सूर्य, सर्वाधिक लोकप्रिय देवताओं में से एक था। विक्रम संवत् 1003 के प्रतापगढ़ अभिलेख के आरम्भ में ही सूर्य की पवित्र एवं कल्याणकारी किरणों का स्मरण किया गया है। द्वितीय श्लोक में सूर्य के तेज को पापों का हरण करने वाला बताया गया है। इस लेख में प्रतिहार नरेश रामभद्र और विनायक पाल को आदित्य भक्त कहा गया है। रामभद्र का यह विश्वास था कि उसने सूर्यदेव की कृपा से पुत्ररत्न प्राप्त किया है। अतः उसने अपने पुत्र का नामकरण 'मिहिरभोज' किया। दौलतपुरा ताम्रपत्र में उसे 'प्रभास' उपाधि से विभूषित किया गया है जो कि सूर्य अथवा मिहिर का पर्याय है। महेन्द्रपाल प्रथम के सामन्त अवनिवर्मन और बलवर्मन ने सौराष्ट्र में तरूणादित्य नामक सूर्यमंदिर बनवाया। महेन्द्रपाल द्वितीय के सामन्त इन्द्रराज ने प्रतापगढ़ के समप घोटार्सी ग्राम में 'इन्द्रराजादित्यदेव' नामक सूर्य मंदिर निर्मित करवाया। इस मंदिर को 'इन्द्रादित्यदेव' मंदिर के अतिरिक्त त्रैलोक्यमोहनदेव, 'नित्यप्रमोदित्य देव' तथा 'तरूणादित्य' आदि नामों से भी जाना जाता है। घोटार्सी से लगभग 3 कि.मी. दूर वरमण्डल नामक ग्राम के बाहर पड़े हुए रथचक्र का उल्लेख गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने किया है। सम्भवतः यह रथचक्र घोटार्सी के सूर्यमंदिर का ही रहा होगा।[8] ऐसा प्रतीत होता है।

महेन्द्रपाल द्वितीय के ही महासामन्त माधव ने मीन संक्रान्ति के दिन घोटार्सी के उक्त मंदिर की खण्डपीठ की रचना हेतु गांव दान किया था। उल्लेखनीय है कि विक्रम संवत् 999 के प्रतापगढ़ अभिलेख में खोम्माण के पुत्र महाराजाधिराज भर्तृभट्ट द्वारा धर्म की वृद्धि हेतु उक्त सूर्य प्रासाद को पलासकूपिका नामक गांव का बब्बूलिका खेत भेंट करने का उल्लेख है। प्रतिहार काल में सौर उपासना की लोकप्रियता की पुष्टि सूर्य महोत्सव से भी होती है जिसमें सूय देवता क मूर्ति को सप्ताश्वरथ पर आरूढ़ कर नगर के प्रमुख मार्गों पर घुमाया जाता था। उत्तरी भारत में विदिशा नगर प्रतिहारों के समय और उपासना का प्रमुख केन्द्र रहा। राजस्थान में यह केन्द्र 'भीनमाल' था। 8वीं शताब्दी का 'जगत्स्वामी' नामक प्रसिद्ध सूर्य मंदिर इसका पमाण है। गुर्जर प्रतिहारों द्वारा निर्मित इस मंदिर की 'जगामडेरा' भी कहते हैं। भीनमाल के 12वीं शताब्दी ई. के लेखों में ओम नमोः सूर्याय, ओम नमोः भास्वरे लिखकर जगत्स्वामी की अर्चना की गई है। उक्त सूर्य मंदिर के स्तम्भों पर भेंट व जीर्णोद्वार से संबंधित अनेक लेख

उत्कीर्ण हैं। इस मंदिर का जीर्णोद्वारा 1060 ईस्वी सन में राजा कृष्णराज के समय में हुआ था। मंदिर के अवशेषों से प्रतीत होता है कि पूर्वाभिमुख यह मंदिर प्राचीन काल में विशाल एवं भव्य रहा होगा। यहां की समृद्ध परम्परा में इस मन्दिर से संबंधित अनेक प्रमाण मिलते है।

जगत्स्वामी मंदिर के अतिरिक्त जोधपुर के समीप ओसियां के आरम्भिक मंदिरों को भी प्रतिहारकालीन माना जाता है। इनमें दो मंदिर सूर्यदेव को समर्पित हैं। इनमें से एक तो विष्णुमंदिर संख्या–1 के उत्तर पश्चिम में कुछ दूरी पर स्थित है। इसके समीप ही एक प्राचीन बावड़ी है। सम्भवतः यहा बावड़ी की व्यवस्था भविष्यपुराण के उस नियम पर आधारित थी, जहां यह विधान किया गया है कि सूर्य का 'स्नान–स्थान' मंदिर के दक्षिण में होना चाहिए। पश्चिमोन्मुख यह सूर्यमंदिर ऊंचे चबूतरे पर बना है। ओसियां स्थित प्रतिहारकालीन एक अन्य सूर्य मंदिर को डॉ. भण्डारकर एवं ब्राउन महोदय ने ओसियां का सर्वाधिक सुंदर एवं वैभवशाली मंदिर बताया है। पंचायत शैली का ऊंची जगती पर बना यह देवालय भी पश्चिमोन्मुख है। सूर्य मंदिर प्रायः पूर्वोन्मुख निर्मित किये जाते है किन्तु ओसियां के सूर्य मंदिर पश्चिमोन्मुख हैं। भविष्य पुराण में उल्लेख मिलता है कि यदि सूर्य मंदिर को पूर्वाभिमुख बनाना संभव न हो तो पश्चिम की ओर से प्रवेश किया जाना चाहिए। इसके अलावा हनुमान मन्दिर का दक्षिणमुखी होना बड़ा शुभ माना जाता है।

विक्रम संवत् 898 के एक अभिलेख में प्रतिहार शासक भोज के सामन्त चन्द्रमहासेन द्वारा धौलपुर में एक सूर्यमंदिर निर्मित करवाने का उल्लेख है। बॉदीकुई से लगभग 6 कि.मी. दूरस्थ आबानेरी के हर्षत्माता मंदिर को भी प्रतिहारकालीन स्वीकार किया जाता है।

प्रतिहार वंशकालीन अभिलेखों में विभिन्न देवी–देवताओं के उल्लेखः–

प्रतिहारकालीन अभिलेखों में विभिन्न देवी–देवताओं और तत्सम्बन्धी सम्प्रदायों का भी उल्लेख प्राप्त होता है तथापि इस विविधता में एकता की भावना भी विद्यमान थी। इससे सांस्कृतिक और धार्मिक समन्वय तथा सहिष्णुता की भावना को बल मिला। प्रतिहार वंश के विभिन्न राजा अनेक देवी–देवताओं की आराधना करते थे। प्रतिहार शासक देवशक्ति विष्णु की तथा वत्सराज और महेन्द्रपाल द्वितीय महेश्वर की उपासना किया करते थे। नागभट्ट द्वितीय

तथा महान भोजदेव भगवती के, रामभद्र तथा विनायकपाल आदित्य के भक्त एवं उपासक थे। नरेशों ने अपने व्यक्तिगत धर्म के उत्थान के साथ–साथ अन्य धर्मों को भी समान रूप से सहयोग प्रदान किया। पौराणिक धर्मों के उत्थान के साथ–साथ अन्य धर्मों को भी समान रूप से सहयोग प्रदान किया। पौराणिक धर्मों के साथ–साथ ये राजा जनसाधारण म लोक आस्था के संवाहक देवी–देवताओं के मंदिरों को आर्थिक सहायता प्रदान करते थे। राजा भोज प्रथम यद्यपि भगवती की उपासना किया करते थे तथापि उन्होंने अपने अन्तः पुर में विष्णु के मंदिर क स्थापना भी की थी। महेन्द्रपाल द्वितीय ने शैव होते हुए भी वटयक्षिणी देवी मंदिर के निर्वाह के लिए खरपरपद्रक ग्राम दान में दिया था। उनके महासामन्त और प्रान्तीय शासक माधव ने इन्द्रादित्य के मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया था। उसने इस मंदिर के दैनिक व्यय के लिए एक ग्राम दान के रूप में देने की घोषणा की थी। इसी के निकट नित्यप्रमोदितदेव (शिव) का मंदिर स्थित था। इन सब मंदिरों का व्यवस्थापक दशपुर निवासी हरि ऋषिवर था, जो स्वयं पाशुपत मतानुयायी था।[9]

इस काल में अनेक देवी–देवताओं की मूर्तियों की प्रतिष्ठा एक ही मंदिर में की जाती थी। सूर्य, ब्रह्मा, शिव, विष्णु आदि देवताओं का एकत्व व्यक्त करने वाली प्रतिमाएँ निर्मित की जाती थीं। हर्षनाथ का मंदिर मुख्यतः शैव मंदिर था परन्तु उसमें सूर्य, ब्रह्मा, शिव और विष्णु की संयुक्त प्रतिमा भी उपलब्ध है। इस त्रिमुख मूर्ति के बीच के मुख पर सूर्य और विष्णु के मुकुट हैं तथा अन्य दो मुखों पर जटामुकुटा द्वारा शिव और ब्रह्मा को दर्शाया गया है, मानो ब्रह्मा, विष्णु और महेश एक ही प्रधान देवता सूर्य के स्वरूप हों। इस विग्रह के हाथों में पृथक–पृथक आयुध त्रिशूल और सर्प (शिव परिचायक), चक्र और शंख (विष्णु परिचायक) और पुस्तक तथा कमण्डल (ब्रह्मा परिचायक) है। ओसियाँ से भी ब्रह्मा, विष्णु, महेश और सूर्य के उक्त रूप को प्रकट करने वाली प्रतिमाएँ उपलब्ध हैं। इन प्रतिमाओं का अर्द्ध भाग विष्णु का है। ये प्रतिमाएँ धर्म सहिष्णु दृष्टिकोण की पुष्टि करती हैं।

नरेश मंथनदेव बड़गूजर ने अपनी माता लच्छुका के नाम पर लच्छुकेश्वर महादेव का मंदिर निर्मित कराया तथा इस मंदिर की पूजा–अर्चना के लिये तथा सार सम्भाल हेतु व्याघ्रपरक नामक ग्राम दान में दिया गया।[10]

कामां अभिलेख से ज्ञात होता है कि मिहिर भोज ने एक शिव मन्दिर के लिए दान किया था। प्रतिहार नरेश त्रिलोचनपाल भी शिव का उपासक था। इनके काल में बड़ संख्या में शिव की पूजा, मूर्ति तथा लिंग दोनों रूपों में की जाती थी। हंसोट ताम्रपत्र लेख के अनुसार प्रतिहार शासक नागभट्ट प्रथम का सामन्त भर्तृभट्ट द्वितीय शिव का भक्त था। इस सामन्त ने हंसोट ताम्रपत्र में महेश्वर धाम का उल्लेख करते हुए स्वयं को परममाहेश्वर उल्लिखित किया है। महाराजाधिराज परमेश्वर महिपाल प्रथम के महासामन्ताधिपति धरणी वराह चावड़ा के हड्डल ताम्रपत्र के अनुसार शिवदेव आचार्य तथा उनका पुत्र महेश्वर कालभैरव (शिव का गण) के स्थान मठ में रहते थे तथा शैव धर्म क शिक्षा देते थे।

राजशेखर की 'कर्पूरमंजरी' से ज्ञात होता है कि प्रतिहार काल में शिव की अर्धनारीश्वर रूप में पूजा की जाती थी। 'अर्धनारीश्वर' मूर्ति में दक्षिणांग भगवान शिव का और वामांग शिवा (पार्वती) का होता है। 'बालभारत' तथा 'विद्धशालभंजिका' में भी भगवान शिव की उपासना करने का उल्लेख मिलता है।

प्रतिहार अभिलेखों में अनेक शैव आचार्यों, शैव संन्यासियों, कारूकों, पाशुपत और कापालिक संन्यासियों का उल्लेख मिलता है। पुराणों के अनुसार पाशुपत सम्प्रदाय की स्थापना लकुलीश ने की थी। इस सम्प्रदाय के अनुयायी लकुलीश को शिव का अवतार मानते थे। ये लोग अपने हाथ में एक दण्ड धारण करते थे जिसे शिव का प्रतीक माना जाता था। शिव को सृष्टि का कर्ता, धर्ता तथा हर्ता मानते हुए ये उपासक योगाभ्यास जप, लिंगोपासना एवं भस्मस्नान को प्रमुख स्थान देते थे।[11]

प्रतिहार काल में हिन्दुओ का धार्मिक जीवन बड़ा समृद्ध, विविध और सहिष्णुतापूर्ण था। उनके काल में मंदिर धार्मिक जीवन के केन्द्र थे। ये केवल पूजा करने के स्थान मात्र ही न थे वरन वहां अनेक प्रकार के उपदेशों, नाटकों, भजन–कीर्तनों, संगीत–नृत्यों आदि का आयोजन होता था। प्रतिहार काल में मंदिर सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के अविभाज्य अंग थे। इसी वजह से मंदिरों की स्थापना करना पुण्य कार्यों के अन्तर्गत था।

निष्कर्ष–

राजपूताना में भगवान भास्कर का आशीर्वाद सर्वाधिक फलवती रहा है। मरूधर में जोधपुर को तो 'सूर्यनगरी' के रूप में भी जानाजाता है।

सूर्य देवता के प्रताप को दृष्टिगत रखते हुए ही प्राचीनकाल से राजवंशों ने सूर्योपासना को महत्व प्रदान किया। राजपूताने के प्रतिहारशासकों ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया।

भीनमाल के प्रतापी प्रतिहार शासकों द्वारा निर्मित मंदिरों मे भी सूर्य–अंकनों की प्रचुरता देखी जा सकती है।

सन्दर्भः

1. Dr. S.B. Raghnandacharya : Some observation on the Lady (Woman) seers of the Rigvade (Vedoddharini, Vol. XI, Jan-March, 1986) pP 126-127
2. Vedic Religion Vol II P. 503
3. निरूक्त, 12.7.2 सूर्या सूर्यस्त पत्नी।
4. द्र. स्वामी दयानन्द, ऋग्वेद माष्य 4.441, विशेष दृष्टव्य, भूमिका से उद्घृत।
5. ऋग्वेद, 9.10.17
6. त्रिगुणायत सतीश, राजस्थान में वैष्णव धर्म : प्रतिहार शासकों का योगदान, पृ.सं. 12–13
7. Sharma, Dashrath, Rajasthan Trough The Ages, P.N. 392
8. ओझा, जी.एच, ओझा निबंध संग्रह, भाग 4, पृ.सं. 22–23
9. व्यास, एस.पो., राजस्थान के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन पृ.सं. 63
10. –वही – पृ. सं. 182
11. बील, रेकार्डस ऑफ द वेस्टर्न वर्ल्ड, पृ.सं. 55–66